ओसवाल जाति का इतिहास

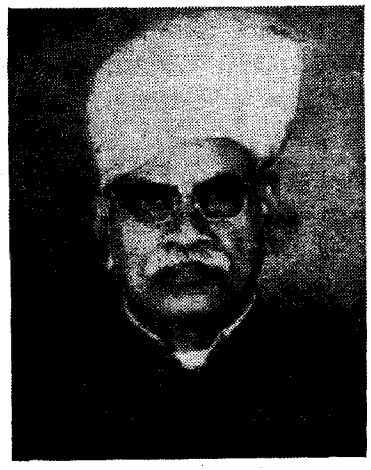

अगरचन्द नाहटा

जाति का सम्बन्ध जन्म से होता है। जैन धर्म में जाति जन्म से न मानकर कर्म से मानी गई है। जबकि वैदिक धर्म में जाति की उच्च-नीचता जन्म पर निर्धारित है। वास्तव में देखा जाय तो एक ही माँ के जन्में हुए या यावत् माँ एक ही साथ जन्में हुए दो बच्चों की प्रकृति, ध्वनि, रुचि, आकृति में भिन्नता पाई जाती है। इसलिये केवल जाति या वर्ण में जन्म लेने से ही उसे ऊँचा व नीचा मान लेना उचित प्रतीत नहीं होता है। सत्-कर्म के द्वारा नीच माने जाने वाली जाति में जन्मा हुआ मनुष्य भी पूजनीय हो जाता है। और असत्य कर्मों द्वारा उच्च वर्ण या जाति में उत्पन्न मनुष्य निन्दा योग्य बन जाता है। जैन धर्म के उत्तराधम्यन सूत्र में कहा है कि कर्मों अर्थात् कार्यों से ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनता है। किसी भी जाति में उत्पन्न हुए मनुष्य का महत्त्व उसके सद्गुणों एवं कार्यों से ही माना जाना चाहिये।

भगवान महावीर के अनुयायी सभी जाति एवं वर्णों के लोग थे। भगवान महावीर का अहिंसा का सिद्धांत समता पर आधारित है। अर्थात् सभी प्राणियों में आत्मा एक समान है उन्हें सुखों एवं दुःखों का वेदन या अनुभव भी समान रूप से होता है। जीवन सभी को प्रिय है, मरण और दुःख कोई नहीं चाहता है। इसलिये प्राणियों के साथ मैत्री और प्रेम का सम्बन्ध बनाये रखना भी अहिंसा है। धर्म में तो सभी को समान स्थान है। जो पालन करे वही उसका अधिकारी है, इसलिये जैन धर्म में हरीकेशी जैसे चाण्डाल भी दीक्षित हो सके, पर आगे चलकर ब्राह्मणों का प्रभाव जैन धर्म पर भी पड़ा और क्रमशः नीची मानी जाने वाली जातियों के लोग जैन धर्म में कम आने लगे, अतः संख्या वृद्धि रुक-सी गई।

जैन धर्म का प्रचार भगवान महावीर के समय तो पूर्व देश की ओर ही अधिक था। क्रमशः वह दक्षिण-पश्चिम की ओर भी बढ़ने लगा। राजस्थान में उस समय श्रीमाल नगर जिसे भिनमाल भी कहते हैं, बहुत प्रसिद्ध व समृद्धिशाली नगर था। वे इस नगर के नाम से श्रीमाल जाति वालों के रूप में प्रसिद्ध थे। श्रीमाल नगर के पूर्व की ओर रहने वाले जैनी प्राग्वाड़-पोरवाड़ जाति वाले कहलाये। श्रीमाल नगर से वहाँ का एक राजकुमार अपने यहाँ के एक श्रेष्ठी परिवार को लेकर एक ऊजड़ स्थान में गया। और वहाँ नगर बसाने का प्रयत्न किया। उस स्थान का नाम उवेश था या ओसिया पड़ा है। जिसे संस्कृत में उपकेश नगर भी कहा गया है। वहाँ रत्नप्रभु सूरि नामक पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्य पधारे। उन्होंने राजा और जनता को चमत्कार दिखाकर जैन धर्म के प्रति अनुरागी बना दिया। वहाँ के जो लोग जैनी बने, वे उस नगर के नाम से अन्यत्र जहाँ भी गये उएस-वंशीय या ओसवाल जाति के कहलाये। इस तरह ओसवाल जाति की स्थापना हुई, मानी जाती है।

पार्श्वनाथ परम्परा के रत्नप्रभु सूरि नाम के कई आचार्य हो गये हैं क्योंकि कई गच्छों में राजवंशों की तरह एक ही नाम की पुनरावृत्ति होती रही। उपकेश-गच्छ-पट्टावली-प्रबन्ध आदि के अनुसार ओस वंश के प्रतिबोधक पहले रत्नप्रभु सूरि, महावीर निर्वाण के सत्तर वर्ष बाद ओसिया आये और ओसवाल जाति की स्थापना की। पर ऐतिहासिक दृष्टि से ओस वंश की स्थापना का समय इतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। ओसिया नगर में जो भी पुरातत्व मन्दिर आदि प्राप्त हैं उनमें आठवीं सदी का पहले का कोई नहीं है। वहाँ के महावीर जिनालय में भी सबसे प्राचीन शिलालेख ११वीं शताब्दी का प्राप्त है। अन्य प्रमाणानुसार भी जैन धर्म का राजस्थान में प्रचार सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही अधिक हुआ, यह कुवलक माला की प्रशस्ति से भी सिद्ध है। नाभिनंदनोद्धार प्रबंध और उपकेश-पदावली प्रबंध में, जो कि संवत् १३९३ के आसपास रचे गये हैं। सबसे पहले यह उल्लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है कि रत्नप्रभुसूरि ने वीर निर्वाण संवत् ७० में ओसवंश की स्थापना की। इससे पहले के किसी भी ग्रंथ में यह संवत् नहीं मिलता है। जितने भी शिलालेख और प्रशस्तियाँ आदि प्राप्त हुई हैं उनमें जो ओसवाल वंश की पूर्वज-परम्परा दी है उनकी पहुंच भी आठवीं शताब्दी से आगे नहीं जाती। इसलिये स्वर्गीय पूर्णचन्द्रजी नाहर आदि ने ओसवाल जाति की स्थापना ९-१०वीं शताब्दी से होना माना है। मुनि ज्ञानसुन्दरजी (देव गुप्त सूरि) ने उपकेश वंश पट्टावली आदि का समर्थन करते हुए जिन प्रमाणों को प्राचीन बतलाया है उन सबकी परीक्षा में अपने ओसवाल नवयुवक पत्र में प्रकाशित विस्तृत लेख में भली-भाँति कर चुका हूँ। अभी तक कोई ऐसा प्राचीन प्रमाण नहीं मिला है जिससे आठवीं शताब्दी से पहले ओसवाल जाति की स्थापना हुई हो, यह सिद्ध हो सके। अतः मेरी राय में यह समय आठवीं-नवीं शताब्दी का होना चाहिये। उपकेश-पट्टावली में जो अन्तिम रत्नप्रभ सूरि नाम वाले आचार्य हुए हैं वे ही ओसवंश के संस्थापक हो सकते हैं।

ओसवाल जाति की स्थापना के सम्बन्ध में दूसरी परम्परा भाट आदि की है। उनके अनुसार बी. ए. आई. में ओसवंश स्थापित हुआ पर एक तो यह संवत् की गोलमोल है, दूसरी इसकी पुष्टि का कोई प्राचीन प्रमाण उपलब्ध नहीं है। भाटों के पास भी प्राचीन बहियाँ माँगी गई तो वे दिखा नहीं सके। कुल-गुरुओं, महात्माओं, मथेरणों आदि के पास जो भी वंशावलियाँ देखी गई, उनमें १६ वीं शताब्दी से पहले की लिखी हुई कोई नहीं मिली। सोलहवीं शताब्दी में श्रीमाल जाति की एक वंशावली श्री आत्मानन्द जैन शताब्दी ग्रन्थ में अंकित हुई है इसी तरह की कपड़े की दो वंशावलियाँ हमारे संग्रह में हैं।

ओसवाल जाति के मूल गोत्र १८ थे जो बढ़ते-बढ़ते १४४४ तक पहुँच गये। समय-समय पर ओसवाल जाति में जैनाचार्य के बनाये हुये नये जैनी सम्मिलित होते गये। स्थानों, विशिष्ट व्यक्तियों और कार्यों के आधार से नये-नये गोत्र के नाम प्रसिद्धि में आते गये। इससे ओसवाल गोत्रों की सूची जैन सम्प्रदाय शिक्षा ओसवाल रास आदि में प्रकाशित हुई है, ७०० तक की संख्या है। किस-किस गोत्र को किस-किस आचार्य ने कब और कैसे प्रतिबोध किया इस संबंध में जो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं वे १७वीं शताब्दी के पहले नहीं मिलती हैं और अलग-अलग गच्छों में गोत्र स्थापना सम्बन्धी विवरण अलग-अलग रूप में मिलता है। मध्यकाल में गच्छों में काफी खींचतान रही है। और प्रत्येक गच्छ वाले हमारे आचार्य ने अमुक गोत्र को प्रतिबोध दिया, इस तरह के विवरण को अपने दफ्तर-बहियों और फुटकर पत्रों में भी लिख रखा है परस्पर विरोधी होने से इस सम्बन्ध में निर्णय तक पहुंचना कठिन हो जाता है।

श्रुति-परम्परा और किंवदन्तियों के आधार पर महाजन-वंश मुक्तावली बीकानेर के प्रसिद्ध वेद और बहुश्रुत यति रामलालजी ने लिखी। इसी तरह यति श्रीपालजी ने जैन सम्प्रदाय शिक्षा नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में प्रकरण लिखा है। इधर मुनि ज्ञान सुन्दरजी ने महाजन वंश महोदय और पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास आदि ग्रन्थों में तथा जामनगर के पंडित हंसराज द्वारा प्रकाशित जैन गोत्र संग्रह, एक अन्य ग्रन्थ श्रीमाल जातियों में जातिभेद और ओसवाल जाति के इतिहास नामक वृहद ग्रंथ में यथाज्ञात विवरण प्रकाशित हुआ है। मैंने भी कुछ लेख लिखे हैं पर सन्तोषप्रद प्राचीन और सामाजिक साधनों के अभाव में ओसवाल जाति का इतिहास अभी तक लिखा नहीं जा सका। अतः जो ग्रन्थ प्रकाशित हुवे हैं उन्हीं से सन्तोष करना पड़ता है। समय-समय पर इस जाति में अनेक वीर, बुद्धिमान, दानवीर धर्मनिष्ठ और प्रभावशाली सम्पन्न व्यक्ति हुए। और आज भी अच्छे प्रमाण में हैं, पर अब लोगों में जातीय गौरव का ह्रास हो चुका है। जो साधन हैं वे भी दिनोंदिन नष्ट होते जा रहे हैं। जाति हितैषी व्यक्तियों को इस ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिये।

ओसवाल जाति के लोगों ने अपने इतिहास को सुरक्षित और दीर्घजीवी रखने का प्रयत्न अवश्य किया। इसलिये कुलगुरुओं, महात्माओं, भाटों आदि को प्रोत्साहन दिया। अपने इतिहास के लेखन और संरक्षण के लिये ही लाखों रुपये खर्च किये पर इसका जैसा परिणाम मिलना चाहिये था वैसा नहीं मिला। ऐतिहासिक विवरण लिखने वालों ने इस कार्य को अपना पेशा बना लिया और अपनी वंशावलियों और बहियों को छिपाकर रखने लगे। भाटों ने तो अपनी सांकेतिक लिपि में बहियाँ लिखनी आरम्भ कर दी। जिससे उन्हें कोई दूसरा पढ़ या समझ नहीं सकता। प्राचीन बहियों एवं वंशावलियों को सुरक्षित रखने में भी वे उदासीन बन गये। नई बहियों में अपने ढँग से संक्षिप्त और काम चलाये जाने लायक विवरण लिखकर अपनी आजीविका चलाते रहे। उनके यहाँ आज भी खोज करने पर कुछ बची-खुची उपयोगी सामग्री मिल सकती है। पर इस जरूरी और महत्वपूर्ण कार्य के लिये कोई अपना समय, श्रम एवं अर्थ व्यय करना नहीं चाहता।

अनेक ग्राम, नगरों में कई गच्छों के महात्मा, मथेरन आदि मिल सकते हैं- जिनके पास पुरानी वंशावलियाँ आदि भी कुछ एक सामग्री बची हुई है। पर इधर वे कोड़ियों में मोल बिकती जा रही हैं। क्योंकि अब उनकी कोई उपयोगिता (अर्थोपार्जन आदि की) नहीं रही। भाटों आदि की अब कोई पूछ व मान-सम्मान न रहा। अतः वे भी दूसरे कार्य-धंधों में लगते जा रहे हैं। इस तरह हमारे पूर्वजों ने जो जातीय इतिहास की सुरक्षा के लिये प्रबन्ध किया था, वह अब बेकार-सा हो गया है। बड़े-बूढ़े लोगों में जो कुछ जातीय गौरव के संस्कार थे, वे भी भावी पीढ़ी में समाप्त होते जा रहे हैं। इस तरह इतिहास के प्रति उपेक्षा बढ़ती जा रही है। अब पुरानी बातें पोथी के बेगन जैसी हो रही हैं। प्राचीन चीजों और ग्रन्थों की खोज को लोग अब मुर्दों को कब्र से खोदकर निकालने जैसा व्यर्थ प्रयास मानने लगे। कुछ वर्षों पहले तक जो वर्तमान इतिहास के संग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का कुछ प्रयत्न होता दिखाई दे रहा था, आज तो वह भी दिखाई नहीं देता ।

ओसवाल जाति का संगठन जैनाचार्यों ने समय की पुकार और भावी कल्याण की दृष्टि से किया था । इससे यह एक बड़ा लाभ हुआ कि जैन संस्कार जैन जातियों में इतने दृढ़ हो गये कि अनेक बुराइयों और पापों से वे सहज ही बच सकें । माँसाहारियों के शासन-सम्पर्क और पड़ौस में रहते हुये भी जातीय-संगठन के कारण माँस-मदिरा निषेध आदि संस्कारों को वे दीर्घजीवी और व्यापक बना सके । हिंसा को कम-से-कम जीवन में स्थान देना पड़े, इसलिये जैन जाति के लोगों ने व्यापार आजीविका का प्रधान साधन बना लिया । अब तो उन संस्कारों को सुरक्षित रखने का प्रयास बहुत ही आवश्यक हो गया है । क्योंकि जैन युवकों में जैन संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं ।

ओसवाल जाति में समय-समय पर अनेक विशिष्ट व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने भारतीय इतिहास को नया मोड़ दिया है । अनेक राज्यों के संचालन में ओसवालों का बड़ा हाथ रहा है । प्रधान मन्त्री, सेनापति, कोषाध्यक्ष, आदि विशेष पदों पर रहते हुवे उन्होंने देश, जाति एवं धर्म की बड़ी सेवाएं की हैं। इतिहास उसका साक्षी है । साहित्य और कला के क्षेत्र में भी उनकी सेवाएं अनुपम हैं । कई ओसवाल कवि और ग्रन्थकार हुए हैं । लाखों हस्तलिखित प्रतियाँ लिखवाकर उन्होंने ग्रन्थों को सुरक्षित रखा । अनेकों कवियों और विद्वानों को आश्रय, सहायता एवं प्रोत्साहन दिया। अनेकों भव्य मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण किया । उन्होंने सार्वजनिक हित के अनेकों कार्य किये । उन सबका लेखा-जोखा यत्किंचित् भी संग्रह किया तो भावी पीढ़ी के लिये वह काफी प्रेरणादायक होगा । अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धावनत होना प्रत्येक कृतज्ञ मनुष्य के लिये आवश्यक होता है । हमारा वह जीवन अनेक जन्मों-जन्मान्तरों, संस्कारों और परम्पराओं से प्रभावित है । सत्पुरुषों से सदा सत्-प्रेरणा मिलती रही है, इसीलिये उनका नाम-स्मरण और गुण स्तवन किया जाता है । इतिहास के द्वारा हमें अपनी पूर्व परम्परा का वास्तविक बोध होता है, दिशा मिलती है । अतः अपेक्षा करना उचित नहीं ।

जिस प्रकार पूर्वकालीन इतिहास को जानना आवश्यक है उसी प्रकार वर्तमान स्थिति की जानकारी भी जरूरी है । आज ओसवाल समाज के लोग किन-किन दिशाओं और बातों में, कौन-कौन अग्रणी हैं, इसकी जानकारी हमें और हमारे बच्चों को होनी चाहिये । इतिहास निर्माताओं पर हमारी दृष्टि रहनी ही चाहिये । समाज के विशिष्ट व्यक्तियों को सामने लाना व उन्नति के इच्छुक व्यक्तियों को आगे बढ़ाना जरूरी है । राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में हमारे पूर्वजों ने जो उच्च स्थान प्राप्त किया उसे बनाये रखना ही नहीं और अधिक द्युतिमान करना हमारा कर्त्तव्य है । पारस्परिक सहयोग, स्वधर्मवात्सल्य और दीर्घ दृष्टि की अत्यन्त आवश्यकता है । देश, समाज, धर्म के अनेकों क्षेत्रों में हमारी सेवाएँ बहुत ही जरूरी होती हैं हमारे पास समय और श्रम, साधन हैं पर उसका सही और अधिकाधिक उपयोग हम नहीं कर पा रहे हैं। भावी पीढ़ी के निर्माण के लिये हम सजग नहीं हैं, यह अवश्य ही चिन्ता का विषय है ।

ओसवाल सम्मेलन जैसी संस्था को हम जीवित नहीं रख सके तो हमें कम-से-कम मंच पर बैठकर विचार विनिमय कर भावी उन्नति का मार्ग खोजते हुए अब भी ठोस कार्यों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न तो अवश्य ही करना चाहिये ।

ओसवाल समाज में आज धनिकों की कमी नहीं, बुद्धिशाली भी व्यक्ति अनेक हैं । पर सही दिशा की ओर ले जाने वाला नेता नहीं है। इसलिये आज हम छिन्न-भिन्न नजर आते हैं । समाज के धन का उपयोग लोक हितों के कार्यों में कम होता है, रूढ़ि दिखावा और कीर्ति आदि में अधिक है। धार्मिक संस्कारों में दिनों-दिन ढील पड़ती जा रही है । यदि इसकी ओर शीघ्र ध्यान नहीं दिया गया तो उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं की जा सकती और हमारे पूर्वजों से महान विरासत में जो संस्कृति हमें प्राप्त हुई है, वह दीर्घकालीन साधना का परिणाम है । हमारे पूर्वजों ने सबको धर्म की प्रेरणा के लिये जो अनेकों मंदिर, उपासरों आदि धार्मिक स्थान बनाये हैं, उनकी उचित देखभाल अत्यन्त आवश्यक है । उन्होंने लाखों रुपये खर्च करके जगह जगह पर ज्ञान-भण्डार स्थापित किये, उनमें ग्रन्थों की सुरक्षा और उनका अध्ययन करके लाभान्वित होना बहुत ही जरूरी है । हमारे बालक-बालिकाओं में संस्कार और नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा बहुत ही जरूरी है । बेकार और आश्रयहीन व्यक्तियों को काम में लगाना, असहाय व्यक्तियों की सहायता करना, समाज के प्रति सेवाभावों को विकसित होने का पूर्ण अवसर एवं सहयोग देना भी उतना ही आवश्यक है । विधवा, बूढ़ों, अपंग व्यक्तियों, की सार सम्भाल तो हमारा कर्त्तव्य ही होना चाहिये । ओसवाल समाज के कर्णाधार मेरे ओसवाल नवयुवक समिति कलकत्ते के विशेषांक में प्रकाशित लेख और इस लेख में दिये गये सुझावों पर गम्भीरता से शीघ्र ही विचार कर ठोस कदम उठावें, यही अनुरोध है । □

प्राप्त दौलत से सुकृत करो, वह तुम्हें आगे भी सहायक सिद्ध हो सकेगा ।

—राजेन्द्र सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org